धृतराष्ट्र
महाभारत पात्र माला

धृतराष्ट्र

नानाभाई भट्ट

१९५६
हिन्दी प्रकाशन मंदिर

प्रकाशक
बृहस्पति उपाध्याय
हिन्दी प्रकाशन मंदिर
इलाहाबाद

तीसरी बार : १९५६
मूल्य
आठ आना

मुद्रक,
श्यामकुमार गर्ग
हिन्दी प्रिन्टिंग प्रेस,
दिल्ली

प्रकाशकीय

महाभारत के पात्रों को इस प्रकार के आकर्षक रूप में पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करते हुए हमें बड़े हर्ष का अनुभव हो रहा है। इनकी छपाई-सफाई में तो विशेष परिवर्द्धन किया ही गया है साथ ही इनका रंग-रूप भी अधिक सुरुचिपूर्ण और आकर्षक बनाया गया है। प्रत्येक पुस्तक के पात्र का चित्र भी दिया गया है।

सारे पात्रों को ग्यारह भागों में निकाला गया है। सामान्य पाठकों की दृष्टि से इसका टाइप बड़ा और मूल्य कम रखा गया है।

हम चाहते हैं कि ये पुस्तिकाएँ प्रत्येक भारतीय परिवार में पहुंचें। आशा है, पाठक इस कार्य में हाथ बँटायंगे। एक-एक करके सारे पात्र पाठकों को मिल जायंगे। सबकी छपाई, सफाई और रंग-रूप इसी प्रकार के रहेंगे।

विषय-सूची

धृतराष्ट्र

: १ :
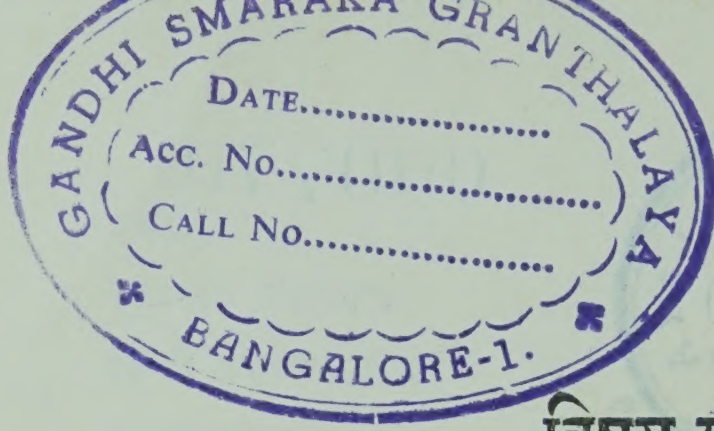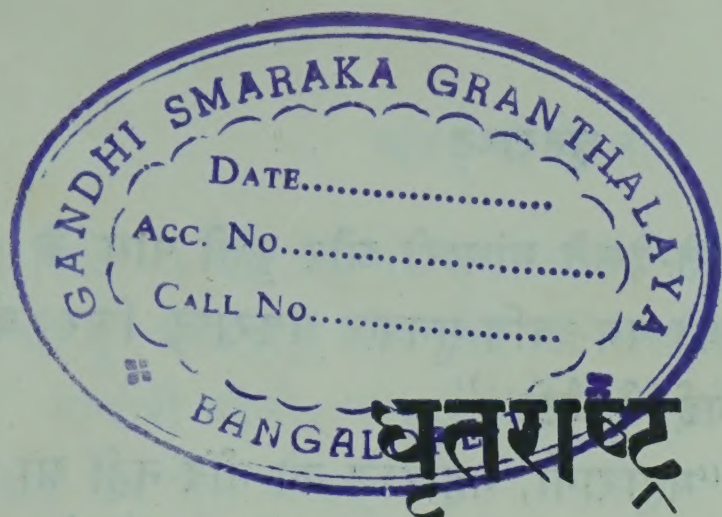
अंतर की वेदना

हिमालय की तलहटी में शतयूप ऋषि का आश्रम है। दूर पर घाटी के बीच होकर गंगा बह रही है। एक तरफ बड़ी दूर तक शाल और देवदार के वृक्षों की कतारें ऐसी दीखती हैं, मानो चक्रवर्ती राजा ने यज्ञ के लिए सैकड़ों स्तंभों का मंडप बनाया हो। पर्णकुटी के निकट शाम को हिरण बैठे हुए जुगाली करते और पेड़ों पर पक्षी कलरव करते थे। बहुत दूर बर्फ़ से ढके पर्वत-शिखर थे और इन शिखरों पर सुंदर दीखता हुआ योगिराज शंकर का कैलास था।

ऋषि के इस आश्रम में धृतराष्ट्र ने निवास किया। संजय, गांधारी और कुंती उनके साथ थे।

एक दिन आधी रात को महाराज धृतराष्ट्र बिस्तर में एकदम उठ बैठे और बोले, "संजय! देवी को बुलाओ।"

"महाराज", संजय बोला, "आप रोज़ इस तरह करेंगे तो कैसे काम चलेगा? आप सो जाइए। अभी तो बड़ी रात बाकी है।"

धृतराष्ट्र बोले, "संजय! तुम्हें व्यास भगवान ने अनेक बार दिव्य दृष्टि प्रदान की, फिर भी व्यथित हृदय की वेदना की थाह लेने का बल तुममें न आया। जाओ, मैं कहता हूँ देवी को बुलाओ।"

धृतराष्ट्र के देखते-देखते गांधारी और कुंती पास के खंड में से आ पहुँचीं। उनकी पग-ध्वनि सुनकर धृतराष्ट्र फिर बोले, "देवी कुंती! तुम आगईं? बैठो।"

संजय बोला, "महारानी, महाराज को नींद नहीं आ रही है। आपको ही याद कर रहे थे। जब से इस आश्रम में पैर रखा है, तब से एक रात भी इन्हें अच्छी तरह नींद नहीं आई है। मेरी तो समझ में नहीं आता कि क्या उपाय किया जाय?"

धृतराष्ट्र बोले, "देवी! बेचारा संजय क्या समझे? नीद आवे कैसे? वह तो मुझसे दूर भागती-फिरती है।

"संजय! मेरी नींद तो दुर्योधन ले गया। दुःशासन, भीमसेन और श्रीकृष्ण मेरी नींद ले गए। अरे, नींद तो मैं हस्तिनापुर के महलों में ही छोड़ आया। तेरह वर्षों तक देवी कुंती की आँखें न झपकी थीं। तेरह वर्ष जंगलों में भटकते हुए द्रौपदी ने बिताये थे। तब मैं पलंग पर सोता था और बन्दी-जनों के स्तवन से जागता था। देवी कुंती! वही नींद आज मेरी बैरिन हो रही है।"

कुंती ने शान्ति-पूर्वक जवाब दिया, "महाराज! यह सब अब आप भूल जाइए और जीवन के शेष दिन शांति से तपश्चर्या में बिताइए।"

संजय बोला, "महाराज! आप अधिक सोच न करें। अब तो आपका शरीर भी जवाब दे रहा है।"

धृतराष्ट्र ने कहा, "संजय! तुम भूलते हो। यह शरीर इतनी जल्दी जवाब देने वाला नहीं है। मृत्यु तो जीवन की अमूल्य वस्तु है। जगत् में मृत्यु न हो तो मनुष्य दुखी हो जाय। मुझे मौत आ जाय तो मैं अपनेको भाग्यशाली समझूं। लेकिन

अपने किये का फल भी तो भुगतना ही चाहिए न ! इसलिए मौत भी दूर भागती है और नींद भी पास नहीं फटकती ।

गांधारी बोली, "महाराज ! कुंती ठीक कहती है । आप यह सब अब भूल जाइए ।"

धृतराष्ट्र गांधारी की ओर घूमकर बोले, "गांधारी ! मैं तो बहुत भूलना चाहता हूं, पर भूल नहीं सकता । मेरे दिल पर बहुत भारी पहाड़-सा रखा मालूम होता है । किसी तरह कुछ कह-सुनकर बोझ हलका करना चाहता है ।"

"आप अपने मन का बोझ हलका कर लीजिए ।" गांधारी ने कहा ।

धृतराष्ट्र क्षणभर चुप रहे । फिर मानो नींद से जागकर बोल रहे हों, इस प्रकार बोलने लगे--

"देवी गांधारी ! कुंती कहां है ?"

"मेरे पास ही बैठी है ।" गांधारी ने बताया ।

"महाराज !" कुंती ने जवाब दिया, "मैं यहीं बैठी हूँ । आज्ञा कीजिए ।"

धृतराष्ट्र कुंती की ओर मुड़े और बोले, "देवी कुंती !" फिर तुरंत ही घुटने टेककर नमस्कार करते हों, इस प्रकार झुककर बोलने लगे, "कुंती ! यह दुष्ट धृतराष्ट्र तुम्हें प्रणाम करता है और तुमपर तथा तुम्हारे पुत्रों पर किये हुए अत्याचारों के लिए क्षमा मांगता है ।"

कुंती झिझकती हुई बोल उठी, "महाराज ! यह क्या करते हैं ? आप मुझे शर्मिंदा न करें । मैं तो आपकी पुत्री के समान हूँ । फिर आपको क्षमा देनेवाली मैं कौन ? क्षमा तो मुझे, आपको और सारे संसार को देनेवाला एक परमात्मा है ।

आप उससे ही दया की, क्षमा की, याचना करिये। मैं भी उससे ही दया की भीख मांगती हूँ।"

धृतराष्ट्र जरा स्वस्थ होकर बोले, "बेटी कुंती! तुमने सच कहा। दया और क्षमा तो परमात्मा की ही चाहिए। और वह तो आठों पहर दया बरसाता ही रहता है, पर मैं पामर उसे ग्रहण नहीं कर सकता। कुंती! तुम्हारा मैंने महान् अपराध किया है, यह स्वीकार करते हुए परमात्मा की दया का प्रवाह मैं अपने हृदय की ओर आता अनुभव कर सकूं, इसीलिए तो तुमसे क्षमा मांगता हूँ।"

फिर संजय से बोले, "संजय! हम एक बार गंगा-स्नान करके लौट रहे थे तब तुमने मुझे खेत में छिपे हुए कुएँ की बात बताई थी। वह ऊपर से खेत की तरह मालूम होता था। उसपर घास भी खूब उगी हुई थी। परंतु वास्तव में वह बड़ा गहरा और अंधेरा था। अनेक अनजान लोग ऐसे अदृश्य कूप में गिरकर प्राण गँवाते थे। कुंती, मैं भी ऐसा ही अदृश्य कुआ हूँ। मैं विचित्रवीर्य का पुत्र, पांडु का भाई, युधिष्ठिर का ताऊ और हितैषी, तुम्हारा ज्येष्ठ और तुम लोगों की ठंढ और धूप से रक्षा करनेवाला छत्र हूँ। पर यह सब तो ऊपर से हरी-भरी दीखने और हवा में डोलनेवाली उसी घास की तरह हैं। असल में तो मैं दुर्योधन का पिता और पाण्डवों का कट्टर शत्रु हूं। ऊपर से हितैषी होने का दिखावा करके मैंने तुम्हारे पुत्रों को तंग करने में कोई कसर नहीं रखी। यह बात आज मुझे जला रही है।"

कुंती बोली, "महाराज! आप शांत रहिये। हम सब मनुष्य ही हैं। यह सब स्वाभाविक रूप से ही हुआ है। आप परेशान न हों।"

तत्काल ही धृतराष्ट्र बोल पड़े, "कुंती मुझे रोको मत। अब तो मुझे अपने मन का भार पूरी तरह से हल्का कर लेने दो। इसे दूर किए बिना मुझे चैन नहीं मिलेगा। बाहर से भले-भले शब्द बोलकर अच्छा बनने और अन्दर से पूरी तरह से दुष्टता को पोषण करने का काम ही मैंने जीवन-भर किया है। कुंती! तुम्हारे पुत्रों का नाश करने के प्रयत्नों को मैंने एक ओर से उत्तेजन दिया तो उसी क्षण दूसरी ओर से ही उनको मीठे शब्दों में, शास्त्र की भाषा में, आशीर्वाद भी दिया। इस प्रकार दुरंगा मेरा जीवन रहा है।"

कुंती ने फिर कहा, "महाराज! इस प्रकार तो हम सभी का जीवन दुरंगा रहता है और हम सभी परमात्मा के अपराधी हैं।"

धृतराष्ट्र तुरंतु बोले, "परन्त, गांधारी के सारे जीवन में ऐसी कोई चीज़ खोजने पर भी नहीं मिलेगी और यदि कभी इसका कोई आभास हुआ होगा तो वह मेरी ही संगति से। यह मैं मानता हूँ कि मनुष्य थोड़ा-बहुत ऐसा दुरंगा जीवन ही बिताता है, पर उसे इस दुरंगे जीवन का भान नहीं होता। वह जो बोलता है, उसका उसके कार्यों के साथ मेल है या नहीं, जो करता है, उसका हृदय के साथ मेल है या नहीं, जो सोचता है, उसका वाणी के साथ मेल है नहीं, यह सब देखना साधारण मनुष्य की शक्ति से बाहर की बात मालूम होती है और इसीसे मनुष्य दुखी हैं। पर कुंती! मेरी बात जरा भिन्न है। मैं हस्तिनापुर का महाराजा ठहरा, साधारण मनुष्य न करने योग्य काम करे तो उसका समाज में बड़ा परिणाम नहीं होता। परन्तु मैं समाज के शिखर पर बैठा हुआ हूँ, इसलिए मेरे कृत्यों का परिणाम समाज में बड़े-बड़े उलटफेर कर सकता

है और बहुतों को उसका फल भोगना पड़ सकता है। फिर, मनुष्य अज्ञान में ऐसा जीवन बिताये तो वह क्षमा के योग्य माना जा सकता है; पर मैं इस कसौटी पर खरा नहीं उतरा। लेकिन हम राजपुरुषों को ऐसे दुरंगे जीवन की शिक्षा ही दी जाती है। आज के राजपुरुष का मतलब दुरंगा जीवन, गरीबों को चूसना और चूसते-चूसते उनके शरीर पर मीठे शब्दों का जल छिड़कना। दूसरों का सर्वस्व लूट लेना और लूटते-लूटते मनुष्य-जाति के कल्याण के आदर्श उपस्थित करना, हृदय में मार डालने की भावना रखते हुए भी मुख से स्वागत के भाषण करना, यह सब राजपुरुषों की शिक्षा मानी जाती है और इन विषयों में जो कुशल हों, राजसभा में उनका सिंहासन प्रथम होता है। मैं इसी प्रकार का राजपुरुष बना। इसीसे आज इस परिस्थिति में आ पड़ा हूँ।

"आज तो हम समाज से दूर, बहुत दूर इस आश्रम में हैं। यहाँ से यदि मेरी आवाज पहुँच सकती हो तो, संजय, मैं सारी दुनिया को सुना देना चाहता हूँ कि राजपुरुष होने का अर्थ मनुष्यता खो देना है। और मैंने सारा जीवन ऐसे व्यापार में ही बिताया है, यह आज मैं तुम्हारे सामने स्पष्ट बता रहा हूँ और यह बताते हुए अपने हृदय का भार कुछ हलका होता अनुभव कर रहा हूँ।"

कुंती बोली, "महाराज! मैं तो यही कामना करती हूँ कि आपके हृदय का भार हलका हो।"

गांधारी ने कहा, "महाराज! आज यह ठीक बात सूझी है। आज आपने निराली शुद्धता धारण की है। कर लीजिए हृदय को जी भरकर खाली।"

धृतराष्ट्र बोले, "देवी ! संजय ! बातें तो अभी बहुत करनी हैं, पर की नहीं जातीं, जैसे कोई मुझे रोक रहा है। कुंती ! मेरी बात मानोगी ? तुम समझ नहीं सकतीं कि जब तुम्हारे पुत्र कुरुक्षेत्र से वापस आये और युधिष्ठिर मेरे पैरों पर गिरा था तब मुझे कितनी वेदना हुई थी ! उसके बाद का सारा समय मैंने उन महलों में किस प्रकार बिताया, यह मेरा मन ही जानता है। हस्तिनापुर का ताप मुझसे सहन न हुआ। इसीलिए मेरी इच्छा हुई कि अब जंगल की खुली हवा में जाऊँ और मैं यहाँ आगया।"

कुंती बीच में ही बोली, "इस प्रकार के तपोवन अपने पवित्र वातावरण से ही मनुष्य को शांति दे देते है।"

धृतराष्ट्र बोल उठे, "कुंती, तुम भूलती हो। यहाँ आकर तो मैं और अधिक दुःखी हो गया हूँ। इस आश्रम की शांति में तो मेरे पिछले सारे कर्मों ने मुझपर एकदम धावा बोल दिया है और मेरी वेदना बढ़ गई है। इस आश्रम की शांति तुम सबको अच्छी लगती होगी, पर मैं तो इससे त्रस्त ही हुआ हूँ। यहाँ आने के दूसरे ही दिन मुझे लगा था कि इससे तो हस्तिनापुर ही अच्छा है। यहां आने के बाद मेरा मन बेकार हो गया। वह मुझे ही खाने को दौड़ता है। ऐसी शांति में ऋषि-मुनि न जाने कैसे रहते होंगे ! गांधारी ! सच कहता हूँ। सारे जीवन में मैंने जो-जो कृत्य और जो-जो विचार किये हैं, वे ताजे होकर स्मरण आते ही हैं, पर जिन कृत्यों और विचारों का मुझे जरा भी स्मरण नहीं है, वे भी हजारों की संख्या में जब मेरे आगे आकर खड़े होते हैं और मुझे पिता के रूप में परिचित कराते हैं तब तो मुझे बहुत ही घबराहट होती है। देवी ! कभी-कभी तो मेरी

इच्छा होती है कि कहीं भाग जाऊँ या गंगा में डूब जाऊं तो इन सबसे छुटकारा हो; परंतु अंदर से कोई मना करता है।

"कुंती ! तुम्हारे सामने अपना हृदय खाली करने से कदाचित् यह वेदना शांत होजाय, इस आशा से तुम्हें दो बातें कहना चाहता हूं। कुंती ! मुझे पापी न समझना। मुझे धूर्त्त समझकर मेरी अवगणना न करना। मुझे पामर और स्वार्थी कहकर मेरी निंदा न करना। मैं इस प्रकार का हूं, फिर भी आज तुम्हारी दया का भूखा हूं। मेरा त्याग न करना। कुंती ! मैं हस्तिनापुर की प्रजा का स्वामी आज तुम्हारी गोद में सिर रखकर रोने का अभिलाषी हूं।

"बेटी कुंती ! मेरे जीवन की अनेक घटनाएं मेरे सामने एकत्र होगई हैं और वे इस प्रकार बाहर आना चाहती हैं, मानो एक के बाद एक अपने चित्र उपस्थित करती हों।

"संजय ! सुनो। भाई पाण्डु उस समय वन में रहता था। एक दिन प्रातःकाल कुछ वनवासी हस्तिनापुर में आये। कुंती और पाण्डव उनके साथ थे। तपस्वियों ने आकर भीष्म पितामह से पाण्डु की मृत्यु की बात कही। पांचों बच्चों को भीष्म की गोद में सौंपा और विदा हो गए। कुंती ! उस दिन मैं कितने ऊंचे स्वर में रोया था—तुम्हें याद आता है ? तुम तो दुःख में डूबी हुई थीं। इसलिए तुम्हें याद न होगा। मैंने बड़े ऊंचे स्वर में रुदन किया, मानो मेरे सिर पर आकाश टूट पड़ा हो; परंतु कुंती ! सच बात कहूँ ? मेरी आंखों में आंसू होंगे, पर मेरे हृदय में दीपक जल उठे थे। पाण्डु के मरने पर मैं हस्तिनापुर का स्वामी बना और हस्तिनापुर की गद्दी पर दुर्योधन के लिए स्थान हो गया। गांधारी ! वह मेरा भाई पाण्डु मेरे सामने खड़ा मुझपर

हँस रहा है। देवी! पाण्डु चला गया। प्रतिष्ठा देनेवाले वे लोग चले गए। जिस राज्य के लिए रोया था, वह राज्य भी चला गया, जिस पुत्र की लालसा से रोया था, वह पुत्र भी चला गया, जो आंसू गिरे थे, वे भी सूख गए; परन्तु इन सबके पीछे मेरा जो ढोंग था, वह मेरी जीवन-पुस्तक में अंकित हो गया और मिटाने से भी नहीं मिटता। इतने दिनों से गंगा-स्नान करता हूँ, इतने दिनों से तप करता हूँ; पर न तो गंगा-स्नान मेरे हृदय को धो सका है और न तप ही उसे निर्मल कर सका है। जिस दिन झूठे रुदन में मैंने लोगों को ठगने का प्रयत्न किया था, उस दिन मुझे पता न था कि दूसरों को ठगने का विचार रखनेवाले लोग दूसरों को तो ठगते ही होंगे, पर उससे पहले अपने आपको ठगते हैं। कुंती! धृतराष्ट्र के जीवन का श्रीगणेश उस दिन हुआ।

: २ :

अंधा पुत्र-प्रेम

"कुंती! तुम और पाण्डव हस्तिनापुर में रहने लगे। पाण्डु के पुत्र और मेरे पुत्र पितामह की छत्रछाया में ही बड़े होने लगे। पितामह ने पहले कृपाचार्य को और फिर द्रोणाचार्य को रखकर उनसे राजकुमारों को शिक्षा दिलाने का प्रबंध किया। पाण्डव और कौरव सब मुझे अपना हितैषी समझने लगे; परन्तु मेरे मन में तो बहुत पहले से ही पाण्डवों और कौरवों के लिए भेद-भाव उत्पन्न हो चुका था। मेरा प्रयत्न सदा यही रहता था कि सब कार्यों में दुर्योधन सदा आगे रहे। द्रोणाचार्य से मैं सदा आग्रह करता रहता था कि वह दुर्योधन की ओर अधिक ध्यान दें। जब सब राजकुमार नदी-तट पर खेलने जाते थे तब मेरे कान

यही सुनने के लिए उत्सुक रहते थे कि दुर्योधन ने औरों को हराया। यह सब इस समय मैं दीपक की तरह स्पष्ट देख रहा हूँ। इसमें कोई संदेह नहीं कि मैं ऐसा ही करता था, पर उस समय यह सब मुझे स्पष्ट दिखाई नहीं देता था। गांधारी ! तुम्हें याद होगा, दुर्योधन की दुष्टता देखकर तुमने मुझे अनेक बार उसका त्याग करने के लिए कहा था, पर मैं उसका त्याग किस प्रकार करता ? सच्चा दुष्ट तो मैं था। दुर्योधन की दुष्टता तो केवल मेरी दुष्टता का प्रतिबिंब थी। मैंने बड़ी कुशलता से अपने दोषों को ढंक रखा था, परंतु ऐसी कुशलता बरतनेवाले मां-बाप भूलते हैं। उनको पता नहीं कि उनके दोष उनके रोम-रोम से बाहर झांकते हैं और छूत की बीमारी के कीटाणुओं की तरह उड़कर उनके बच्चों को लग जाते है। दुर्योधन चाहे जितना दुष्ट था, पर गांधारी की गोद में खेला था; इसलिए उसकी दुष्टता प्रकट थी। उसमें एक प्रकार की उच्चता थी। उसकी दुष्टता में गांधारी की निडरता थी; पर मैं तो छिपा दुष्ट था। मुझे दुष्टता प्यारी थी; पर दुष्टता करने की हिम्मत मुझमें नहीं थी। गांधारी ! मेरी दुष्टता को कोई देख न ले, इस भय से मैं उसे बार-बार हृदय की गहराई में धकेलता रहा। संभवतः इसीसे आज भी वह बाहर आते डरती है।"

"महाराज ! हम सब तो यह समझते थे कि आप पुत्र-स्नेह के वश होकर दुर्योधन को कुछ नहीं कहते थे।" संजय बोला।

धृतराष्ट्र ने कहा, "केवल यही नहीं। जब भीमसेन को दुर्योधन ने लड्डू में विष खिला दिया था तब मुझे बहुत बुरा लगा था। इस बात का पता लगने पर मैंने एकान्त में अपने पुत्र को खूब धमकाया था। परन्तु अपनी धमकी की पोल को मैं उतनी अच्छी तरह नहीं समझता था, जितनी अच्छी तरह मेरे

पुत्र उसे परख गए थे। मुझे उस समय अच्छे काम अच्छे और बुरे काम बुरे लगते थे सही; परन्तु अच्छे काम अच्छे ही हैं, इस पर मुझे विश्वास नहीं था। इसलिए मैंने इसके लिए कभी कोई आग्रह नहीं रखा। परिणाम-स्वरूप मैं दुष्टता में अधिक-से-अधिक लिप्त होता गया। कुंती! दूसरी बात क्यों कहूँ ? यह तो अभी कल की ही बात है। दुर्योधन को युद्ध से रोकने की सबने मुझे सलाह दी थी। मैं चाहता तो उसे रोक सकता था; परन्तु मैं तो किसी भी चीज में विश्वास रखना छोड़ बैठा था और अपना सारा जीवन एक जुआरी की तरह मैंने दैव को सौंप दिया था। जीवन का यह जुआ मनुष्य को किस तरह नष्ट कर देता है, यह किसीको देखना हो तो धृतराष्ट्र के पास आये और उसका हृदय खोलकर देखे।

"परन्तु कुंती, मैं दूसरी ओर चला गया। पुरोचन! खड़ा रह। बाहर आने के लिए क्यों उतावला हो रहा है ? मैं कुंती से तेरी ही बात कहने लगा हूँ। पर दुष्ट! इसके बाद फिर तू मेरा पीछा छोड़ देना। कुंती! उस समय की बात है, जब तुम्हें वारणावत के महल में भेजा था। द्रोणाचार्य की विद्या में पाण्डव मेरे पुत्रों से अधिक कुशल हो गए, यह मुझसे सहन न हुआ। मेरे पुत्रों ने पाण्डवों को किसी प्रकार समाप्त करने की योजना बनाई और मुझसे उन्होंने यह विनती की कि पाण्डवों को वारणावत में विहार करने के लिए भेजा जाय। कुंती! सच-सच कहता हूँ। इस विनती की आड़ में जो कुछ छिपा था, उसका मुझे पता था। परन्तु ऐसी योजनाएँ तो हम राजपुरुषों की ओट में बनती ही रहती हैं और आवश्यकता पड़ने पर न्याय-सभा में हम शपथपूर्वक यह घोषणा कर सकते हैं कि हमें ऐसी किसी बात

का जरा भी पता नहीं है। पाण्डव तैयार होगए। तुम सब मेरे पास आज्ञा लेने आये। मैं तुम लोगों के वियोग के दुःख से आँखों में आँसू भर लाया और तुम विदा हुए। विदुर! मेरी डूबती हुई आत्मा को बचाने के लिए तुमने कितना प्रयत्न किया है, यह जब मैं स्मरण करता हूँ तो मेरी इच्छा होती है कि किसी जन्म में तुम्हारा संबंधी बनकर सारा जीवन तुम्हारी सेवा में बिताऊँ। विदुर! हम तीनों भाई थे। पांडु स्वर्ग चला गया; तुमने मेरे वैभव में जरा भी हिस्सा न बटाया, परंतु मेरी डूबती नौका को स्थिर दीपक दिखलाया। कुंती! जब तुम लोगों को भेज रहा था तब विदुर ने मुझे रोका था। मेरे पुत्रों की नीयत विदुर परख गया था; पर मैंने तुम लोगों भेज दिया। कुछ दिनों बाद समाचार मिला कि वारणावत का नया महल जल गया और उसमें तुम छहों भस्म होगए। खबर सुनकर मैं रोया, मेरे पुत्र रोये, शकुनी रोया, गांधारी रोई और हस्तिनापुर की सारी प्रजा रोई। परंतु मैं तो लोक-लज्जा से रोया था। मेरी समझ में मेरा वह अंतिम झूठा रुदन था। हस्तिनापुर के लोगों को हमपर शंका हुई; पर बहुत दूर वारणावत में घटना हुई थी, इसलिए उनकी शंका को उत्तेजन न मिला और धीरे-धीरे लोग सबकुछ भूल गए। पाण्डवों से छुट्टी पाकर मेरे पुत्र बिल्कुल निश्चिंत होगए। मुझे भी ऐसा विचार आया कि अब झूठ-सच बनाने की ज़रूरत खतम होगई। इसलिए बाकी जीवन शांति से बीतेगा। कुंती! थोड़े दिन बड़ी ही शांति और आनंद से बीते। ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे हृदय का भार हलका हो गया है।

: ३ :

ईर्ष्या जागी

"पर तभी समाचार मिला कि राजा द्रुपद की सभा में अर्जुन ने लक्ष्य बेधकर द्रौपदी को प्राप्त किया और पाण्डवों ने वहाँ एकत्र हुए समस्त राजाओं का दर्प चूर किया।

"इस समाचार से मुझे गहरा धक्का लगा। अपने पुत्रों के लिए रचे गए सारे स्वप्न भंग हो गए। मैं यह कामना करने लगा कि यह खबर झूठी निकले। क्षणभर मुझे ऐसा जान पड़ा कि मेरे हृदय में घोर अंधकार छाता जा रहा है और मैं एकदम मूढ़ बन गया। पर कुंती! फिर मैं तुरंत ही सावधान हुआ और मैंने यह दिखलाने में कोई कसर नहीं रखी कि इस खबर से मुझे अपूर्व हर्ष हुआ है। इस खबर के मिलते ही मैंने सारे हस्तिनापुर में मिठाई बँटवाई, राजमहल में बाजे बजवाये, ब्राह्मणों से स्वस्ति-वाचन करवाया, कुमारी कन्याओं का शृंगार करवाया और उस दिन रातभर सारे नगर में रोशनी करवाई। परंतु कुंती! सच कहता हूँ, मुझे क्षमा करना, मेरे हृदय में केवल अंधकार था। पाण्डव जीवित होंगे तो मेरे पुत्रों को जीने नहीं देंगे, इस विचार ने मुझे गहरी चिंता में डाल दिया था!

"कुंती! हारा हुआ तिकड़मी और क्या करता! मेरा पुत्र गांधारी के भाई की सलाह लेने लगा। संजय! याद है? एक दिन गंगास्नान करके लौट रहे थे तब रास्ता भूलकर हम एक दलदल में गिर पड़े। उसमें पैर पड़ते ही हम गहराई की ओर जाने लगे। मैंने बाहर निकलने की चेष्टा की, पर ज्यों-ज्यों प्रयत्न करता था त्यों-त्यों पैर अधिक गहराई में चले जा रहे थे। अन्त

में जब तुमने मुझे अपनी तरह सीधा लिटा दिया तब हम दोनों बचे और तपस्वियों के बाहर निकालने पर घर आये। मैं अभी तक वह दिन भूला नहीं हूँ। मेरे और मेरे पुत्रों के इस पाप को भी ऐसा ही समझो। कुंती ! मैं हृदय खोलकर बात कर रहा हूँ। मैं प्रत्येक बार ऐसा सोचता था कि यह अंतिम प्रयत्न और कर लिया जाय, जिससे आगे और अधिक कुछ न करना पड़े। परंतु वह सोचा हुआ अंतिम पाप तो अंत में केवल अन्य अनेक पापों की पहली सीढ़ी बनकर रह जाता था।

"कुंती ! द्रौपदी को लेकर तुम सब जब हस्तिनापुर आये तब से मेरी अस्वस्थता बढ़ गई। हाँ, कभी-कभी मेरा विदुर जब मेरे पास आकर धर्म-शास्त्र की बातें करता था तब क्षण भर के लिए मैं बदल जाता था। क्षण भर तुम सबके लिए मुझे ममता हो आती थी और अन्दर से मुझे बार-बार कोई कहने लगता था कि मैं जो करता हूँ, वह ठीक नहीं है। पर यह स्थिति विदुर के सामने ही रहती थी। विदुर के न होने पर जब दुर्योधन मेरे समीप आता था तब मैं दूसरा ही धृतराष्ट्र बन जाता था। गांधारी ! महान् है तुम्हारी पवित्रता; तुम्हारी पवित्रता से तो, मैं समझता हूँ, यह पतितपावनी गंगा भी पवित्र होती है। तुम्हारी वह पवित्रता मेरे साथ थी, फिर यह क्या बात थी जो मैं दुर्योधन को ही देखता और उसीकी बात मानता था ? गांधारी ! आज वह बेचारा स्वर्ग में है और मैं पृथ्वी पर पड़ा हूँ। परंतु देवी ! तुम्हें अपनी पवित्रता में जितना विश्वास है, उससे कहीं अधिक विश्वास मेरे दुर्योधन को अपने पाप में था। कदाचित इसीलिए उसने मुझे जीत लिया था। मुझे तो तुम आरम्भ से ही पहचानती हो। आजतक अपने आपको मैं धर्मिष्ठ

समझता था। आजतक मैं यही मानता था कि प्रतिदिन धर्म की शास्त्रोक्त क्रियाएँ करते रहना और शेष समय में व्यवहार तथा समाज को गहरा धक्का न लगे, इस प्रकार अपना स्वार्थ सिद्ध करते रहना ही अच्छे मनुष्य का लक्षण है। आज इस तपोवन की शांति में आकर मुझे अपनी भूलें समझ में आती हैं। देवी! वे धर्म-क्रियाएँ अपने-अपने स्थान पर रह गईं, वे स्वार्थ के प्रयत्न भी अपनी-अपनी जगह पर पड़े रहे! परंतु उन सबसे डोलायमान हुआ मेरा यह मन मुझे नहीं छोड़ता और छोड़ेगा भी नहीं। गांधारी! मेरे जैसे सारी दुनिया के साम्राज्य के पीछे दौड़ने वाले बेचारे अनेक मृगों को यह क्या पता है कि यह सब प्रयत्न व्यर्थ के हैं?

"कुंती! सुनती हो? बीच-बीच में मैं दूसरी तरफ चला जाता हूँ! संजय! तुम मुझे रोकते भी नहीं हो? जब द्रौपदी को लेकर तुम सब हस्तिनापुर में आये तब मैं प्रसन्न हुआ और पाण्डवों को इन्द्रप्रस्थ नगर तथा राज्य का आधा भाग दे दिया। तुम लोग इन्द्रप्रस्थ चले गए। परंतु कुंती! मैं सच कह रहा हूँ, मेरे मन को जरा भी चैन न मिली। हर रोज दिन डूबने भी न पाता था कि तुम्हारे पुत्रों के किसी-न-किसी राजा को परास्त करने और एक नया देश विजित करने का समाचार आ जाता था। इससे मेरे हृदय की जलन बढ़ती थी। कुंती! आज जिस प्रकार सब समझ में आरहा है, उस प्रकार उस समय नहीं आता था। पाण्डवों का राज्य और सत्ता बढ़ने से मेरा कुछ बिगड़ नहीं रहा था; मेरे दुर्योधन के एक ग्राम में भी इससे कमी नहीं आरही थी; तुम्हारे पुत्र मेरे दुर्योधन के प्रताप को जरा भी हानि नहीं पहुँचा रहे थे; परंतु मेरे मन में यही विचार आता

था कि पाण्डवों का तेज बढ़ने से दुर्योधन का तेज घट रहा है। पाण्डवों को दुर्योधन से सदा नीचे रहना चाहिए, यही मेरी अभिलाषा थी और इस अभिलाषा का पोषण करते हुए मुझे ऐसा मालूम होता था कि मैं केवल अपने पुत्रों के प्रति कर्त्तव्य पालन कर रहा हूँ। आज स्पष्ट जान पड़ रहा है कि इस प्रकार का विचार करने में मेरे मन में पाण्डवों के प्रति द्वेष के सिवा दूसरी कोई भावना नहीं थी। पाण्डवों के अपने मार्ग पर आगे बढ़ने में दुर्योधन की कोई हीनता नहीं थी, परंतु हम दुनिया के मनुष्य अपनी हीनता और उच्चता का विचार दूसरों की दृष्टि से करते हैं, यही भूल है। मेरा सारा जीवन ऐसी ही भूल में बीता है। पाण्डवों की कीर्ति को बढ़ते हुए सुनकर मैं अधीर हो गया। मेरे पुत्र भी यही विचार करते रहते थे कि पाण्डवों का किसी प्रकार नाश किया जावे।

"इतने में युधिष्ठिर ने राजसूय-यज्ञ किया। श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीम ने मिलकर जरासंध का वध किया और बंदी बने राजाओं को छुड़ा दिया। जब मुझे यह समाचार मिला तब मैं चकित हो गया। मैं ऐसी कल्पना भी नहीं कर सकता था कि जरासंध को और उसके साम्राज्य को भी कोई मिट्टी में मिला सकता है। भीम ने जब जरासंध का वध किया तब मेरी आँखें खुल गईं और क्षण भर मुझे ऐसा जान पड़ा कि पाण्डवों के सामने आना मेरे पुत्रों के लिए सिंह के जबड़े में हाथ डालने के समान है।

"परंतु यह विचार आते थे और फिर छिप जाते थे। युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ में भीष्म, द्रोण, दुर्योधन और अन्य कई लोग गए। विदुर, तुम भी गए थे; परन्तु मेरे तो आँखें ही नहीं

हैं, मैं क्या जाता ? जब दुर्योधन इन्द्रप्रस्थ से वापस आया और उसने मुझसे पाण्डवों के ऐश्वर्य का वर्णन किया तब मेरी नींद उड़ गई। द्वारकाधिपति श्रीकृष्ण का मनुज-श्रेष्ठ के रूप में पूजन हुआ और उस पूजन का विरोध करनेवाले शिशुपाल का सिर धड़ से अलग कर दिया गया। उन्हीं महानुभाव श्रीकृष्ण ने यज्ञ में राजाओं के पैर धोने का काम संभाला। भारतवर्ष के दूर-दूर के राजाओं-महाराजाओं ने महाराज युधिष्ठिर के चरणों में मस्तक टेके और अनेक मूल्यवान भेटों से उनका सार्वभौम पद स्वीकार किया। यह सब मैंने जब विस्तार से सुना तब मेरे मन की क्या दशा हुई होगी, इसकी कल्पना भी तुममें से कोई नहीं कर सकता। अपने पुत्रों को सदा पाण्डवों से आगे देखने के इच्छुक धृतराष्ट्र को यह सब किस प्रकार अच्छा लगा होगा ? यह सब वर्णन सुनकर मेरे कान थक जाते थे; परन्तु मैंने धीरज रखा और दुर्योधन को भी धीरज बँधाया। कुंती ! सच कहूँ, मैं अंधा हूँ, यह सभी जानते हैं। मुझे यदि कोई अंधा कहे तो यह एक सच्ची बात होगी, यह भी मैं जानता हूँ; परन्तु फिर भी जब द्रौपदी ने दुर्योधन को ताना दिया कि 'अंधे के बेटे अंधे ही होते हैं,' तब मुझे बड़ा दुःख हुआ और द्रौपदी का और तुम सबका हितैषी होने पर भी उसकी चोटी खींचने की मेरी इच्छा हो आई। बाद की बात तो तुम सबको पता है ही। यह द्रौपदी आगई ! द्रौपदी ! अब तो अपने बालों का जूड़ा बांध ले। द्रौपदी ! जगदम्बे ! तेरी चोटी ने मेरे दुःशासन की बलि ले ली। अब तो क्षमा कर। आ जा, मेरी गोद में बैठना चाहती है ? नहीं, नहीं मैं जल जाऊंगा। पवित्र स्त्रियों का स्पर्श होने योग्य मेरी गोद नहीं।"

संजय बोला, "महाराज ! हम तो इस समय आश्रम में हैं।"

धृतराष्ट्र ने कहा, "ओह ! मैं भूल गया था। फिर मैंने अपने जीवन का सबसे अधिक कलंक-पूर्ण कार्य किया। जुआ कितनी खराब वस्तु है, यह मैं जानता था। दुर्योधन ने जब अपना विचार मेरे सामने रखा तब मैंने उसे बहुत रोका; परन्तु दुर्योधन बिलकुल न टला। अंत में मैंने हारकर विदुर को आज्ञा दी कि पाण्डवों को जुआ खेलने के लिए बुला लाओ। विदुर ! तुम्हें कितना याद करूं ? तुम्हारा एक वचन लाखों के मूल्य का था; परन्तु मैं अंधा था। इसलिए मुझे अपना विनाश कैसे दीख सकता था ? कुंती ! तुम्हें भी न सूझा कि तुम युधिष्ठिर को रोकती। कैसे सूझ सकता था ! दैव को यही पसंद था। फिर तुम सब आये और हम सबने बड़े आडम्बर के साथ तुम्हारा स्वागत किया। गांधारी ! तुम्हारा शकुनी तो उस दिन फूला नहीं समा रहा था।"

"फिर दूसरा दिन हुआ। जुआ खेला गया। मेरा पुत्र दुर्योधन जुए में जीत गया ! ऐं ? नहीं, हार गया। कुंती ! तुम्हारे पुत्र जुए में हार गए ? नहीं, जीत गए। जगत् में कई बार जीत हार से भी अधिक बुरी होती है और हार जीत से अधिक मूल्यवान होती है। मेरे पुत्र दुर्योधन ने युधिष्ठिर की लक्ष्मी को, उसके राज्य को, उसके दास-दासियों को, उसके भाइयों को और सती द्रौपदी को भी जीत लिया; परंतु इनसब को जीतकर वह स्वयं अपनी मनुष्यता को हार बैठा। गांधारी ! मेरे पुत्र को शकुनी ने नष्ट किया। पर शकुनी को क्यों दोष दूं ? यह दोष तो मेरा ही था। संजय ! द्यूत-सभा में पासे किस प्रकार पड़ रहे हैं, यह मैंने तुमसे कितनी आतुरता से पूछा था, तुम्हें याद है ? मुझे यह अच्छी तरह याद है। सफेद आसन पर

पड़ते हुए उन हाथी दांत के पांसों का जब तुम वर्णन कर रहे थे तब मेरे आनंद की सीमा नहीं थी। एक भी शस्त्र की झंकार किये बिना मेरे पुत्र ने जब पांडवों और द्रौपदी तक को दास बना लिया तब मुझे शकुनी के बुद्धि-वैभव पर सोने का कलश चढ़ता जान पड़ा। परंतु यह आज समझ में आ रहा है कि वह सोने का कलश भुलावा मात्र था। कुंती ! जब मैं यह याद करता हूँ कि सारे कुरुकुल के मुखिया, सारे कुरुकुल की लाज के प्रतिनिधि, सारे कुरुकुल की पवित्रता के संरक्षक मैंने स्वयं अपनी पुत्री समान द्रौपदी की लाज भरी सभा में लुट जाने दी तब मुझे अपने प्रति घोर तिरस्कार उत्पन्न होता है और इस महापाप से मैं किस जन्म में छूटूँगा, यह सोचते हुए मेरा मस्तिष्क थक जाता है। दुर्योधन ने यह जुआ न खेला होता तो आज समस्त कौरव जीवित होते और हस्तिनापुर में आनंद मना रहे होते। जुआ खेलने पर भी शर्त्त न रखी होती तो वे सौ भाई युधिष्ठिर के पार्श्व में शोभा दे रहे होते। शर्त्त रखने पर भी द्रौपदी को बाजी पर न रखा होता तो आज कौरव और पाण्डव इकट्ठे मिलकर समस्त भारतवर्ष को हिला देते और द्रौपदी की बाजी लग चुकने पर भी मेरे दुःशासन ने उसका चीर-हरण न किया होता तो आज मेरी पुत्र-वधुओं के जीवन वीरान न बने होते और ऊजड़ अरण्य में डालियों और पत्तों से हीन ठूँठ की तरह जल-जलकर मरने की अपेक्षा मैं अपने एक सौ पांच पुत्रों के बीच सुख की नींद सो जाता। परन्तु संजय ! जब मैं स्वयं ही बुरा हूँ तब और किसे दोष दूँ ? अपनी करनी का फल मैं न भोगूँ तो और कौन भोगे ? कुंती ! जब मेरे पुत्रों ने द्रौपदी की यह दशा की तब तुम्हारे हृदय के तो टुकड़े-टुकड़े हो गए होंगे ? पर मैंने यह सब बड़े मजे

से सुना और मन में प्रसन्न भी हुआ। मुझे यह भी विचार आया कि मुझे अंधा कहने का अच्छा बदला लिया गया। मुझे उस दिन समझ न पड़ा कि पवित्र आर्याओं को जुए में जीतनेवाले लोग अपने जीवन की ही समाप्ति करनेवाले हैं। मैं उस दिन न जान सका कि पवित्र अर्याओं के बालों की फरफराहट सैंकड़ों वर्षों से जड़ें जमाये हुए वृक्षों को निमिष मात्र में भस्म कर डालती है। मुझे उस दिन पता न लग सका कि जो लोग भरी सभा में, खुली आँखों से और अपने ही हाथों से पवित्र आर्याओं का अपमान करके अपने-आपको गर्वित समझते हैं, वे काल के गाल में समाने जा रहे हैं।

"कुंती! गांधारी! उस घटना को आज भी जब मैं स्मरण करता हूँ तो जैसे मेरे चारों ओर भूतों का जमघट खड़ा हो जाता है और मुझसे इसका जवाब माँगता है। और तो मेरे पास कोई जवाब है नहीं, केवल यही है कि मैं अंधा था, लोभी था। लोभ की आँखें होती भी कहाँ हैं! दुर्योधन से मुझे स्नेह था, इससे उसकी सारी करतूतों को मैं आगे बढ़ने देता था। मैं सोचता था कि इस प्रकार मेरे लोभ को संतोष मिलेगा; परंतु आज अब रोने से भी शांति नहीं मिल रही है।

"कुंती! एक बात और रह गई। जब सभा में भारी हाहाकार मच गया और दुःशासन जैसा बलवीर भी द्रौपदी का चीर खेंचते-खेंचते थक गया, तब मुझे विचार आया कि कहीं द्रौपदी मेरे पुत्रों को शाप देकर भस्म न कर डाले। इसलिए मैं सभा के बीच दौड़कर आया। यह संजय बैठा है। सभा में जाकर मैंने द्रौपदी को अपनी गोद में बिठाया और उसे प्रसन्न करने के लिए उसे और पांडवों को दासता से मुक्त कर दिया। कुंती!

सच बात कह दूँ ? सभा में लोग मेरी बड़ी स्तुति करने लगे, जैसे मुझे अपने पुत्रों का काम अच्छा न लगा हो और मैं द्रौपदी तथा पांडवों के साथ न्याय करने आया होऊँ। परन्तु बात ऐसी नहीं थी। मेरी इस उदारता में भी स्वार्थ था। गांधारी ! हम राजा लोग शत्रु को तड़पा-तड़पाकर मारने में अपनी कुशलता समझते हैं। चोट करने के साथ-साथ चोट की जगह पर ठंडे पानी के छींटे देने की भी हम व्यवस्था किये रखते हैं। ऐसा करने से लोगों की दृष्टि हमारी की हुई चोट की ओर न जाकर पानी के छींटों की ओर ही चली जाती है। लोगों का बड़ा समूह उस दुःख को भूल जाता है और हमें दूसरी बार फिर कभी चोट करने का अवसर मिल जाता है ! मैंने विचार किया कि द्रौपदी योगमाया का अवतार है, कहीं मेरे पुत्रों को शाप न दे डाले, इसलिए भयभीत होकर मैंने उसे वरदान दे दिया और जब वह प्रसन्न हो गई तभी मेरे मन को शांति मिली।

"फिर भी मेरे पुत्रों को यह कब सहन हो सकता था कि पांडव इस प्रकार बचकर निकल जायं ? और पुत्रों के संकेत पर नाचनेवाले मुझको भी यह कैसे सहन हो सकता था ? इसलिए पांडवों को फिर से जुआ खिलाया और बारह वर्षों के लिए बन-वास दे दिया। गांधारी ! यह सब दुर्योधन ने किया, पर मन में मुझे भी यह अच्छा लग रहा था, इसमें कोई संदेह नहीं। मुझे अच्छा न लगा होता तब तो उस दिन मैं उन्हें कदापि सम्मति न देता, बल्कि विरोध करता। विदुर ! गांधारी ! तुमने मुझे कई बार चेतावनी दी, पर मैं अंधा सावधान न हुआ। आज जब मेरी दुष्टता और पामरता के परदे एक-एक करके उठ रहे हैं तब मैं सबकुछ समझ रहा हूँ। परंतु आज इस समझ का लाभ क्या

है ? मेरे पापों ! आओ, तुम एक-एक करके क्यों आ रहे हो ? सब इकट्ठे होकर आओ और मेरे हृदय को जितना दंश कर रहे हो, उससे अनेक गुना अधिक करो; दुनिया के सब सांप और बिच्छू तुम्हें अपना विष प्रदान करें। दुनिया की समस्त अग्नि तुम्हें अपनी ज्वालाएँ सौंपे; और हे पापों ! तुम मुझे दंश करो, मुझे जलाओ। यह धृतराष्ट्र इसी योग्य है। संजय ! मुझे हिमालय पर ले चलोगे ? कुंती ! मैं हिमालय की चोटी पर बैठकर सारे भारतवर्ष से कुछ कहना चाहता हूँ।

"यह जयद्रथ क्यों आया है ? बेटा ! मेरे लिए तो तू भी पुत्र समान है। मेरे पाप के छींटे तुझपर भी जा पड़े, अन्यथा सिंधुराज जयद्रथ ! मेरी दुःशला को छोड़कर द्रौपदी पर क्यों दृष्टि डालता। जयद्रथ ! तू शंकर का भक्त था। तेरा इतना तप था कि तू माँगता तो शंकर से तुझे मोक्ष भी मिल जाता। परंतु तूने छोटी-सी शक्ति माँगी और अर्जुन के हाथ से मृत्यु को प्राप्त हुआ। जयद्रथ ! मेरी ओर क्या देख रहा है ?

"कुंती ! क्षमा करना। मैं फिर दूसरी तरफ चला गया। तुम्हारे पुत्रों को वन में भेजकर भी मुझे शांति न मिली। मेरे पुत्र सदा इस प्रयत्न में रहते थे कि वन में भी पांडव किस प्रकार दुःखी हों और बारह वर्षो का अंत होने पर भी किस प्रकार उनके वनवास का अंत न हो। मैं तो सदा ही उनके पीछे रहा करता था। बारह वर्ष देखते-देखते बीत गए और तेरहवाँ भी खतम होने आया। पाण्डवों का कहीं भी पता नहीं था। तभी अचानक निरभ्र वज्रपात की तरह पाण्डव विराट में चमक उठे और हम सब चौंक पड़े। तेरह वर्षों के बाद भी पांडव कुशलपूर्वक होंगे, इसकी मुझे तो कल्पना तक नहीं थी। इसके पश्चात्

जब अर्जुन ने विराट-राज्य की सीमा में कौरव-सेना को कुचला और अनेकों के वस्त्र उतार लिये तब तो मैंने अपने पुत्रों को काल के मुँह में समाते देखा। कुंती ! सच तो यह है कि उस दिन से मैंने अपनी नींद गँवा दी है और अब कब उसे फिर प्राप्त कर सकूँगा, यह नहीं कह सकता।

: ४ :

सर्वनाश की ओर

"गांधारी ! इसके बाद के दिन तेजी से बीतने लगे। सारे हस्तिनापुर के वातावरण में चंचलता और गर्मी आ गई। प्रतिदिन पांडवों से युद्ध करने की चर्चा छिड़ने लगी; प्रतिदिन दूत और प्रतिदूत आने-जाने लगे; प्रतिदिन विषभरे बाणों से भी अधिक दुखदाई संदेश विराट और हस्तिनापुर के बीच घूमने लगे; प्रतिदिन पुराने दबे हुए वैर का विष नई सज-धज से प्रकट होने लगा और इन सबका साक्षी मैं धृतराष्ट्र, लोभ और विनाश-भय के बीच गोते खाने लगा। गांधारी ! पितामह और द्रोण ने जब मेरे पुत्रों और पाण्डवों के युद्ध का चित्र मेरे सामने खींचा और पांडवों को संतुष्ट करने का मुझसे आग्रह किया तब मैं पिघल गया। अपने पुत्रों का विनाश मैंने निकट देखा और संधि करने के लिए तैयार हो गया; पर मैं था तो कमजोर ही न ! मेरी आदत शुरू से ही ऐसी थी कि क्षण भर के लिए मैं दृढ़ हो जाता था, पर जैसे ही दुर्योधन आकर मुझे धमकाता था, वैसे ही मैं ढीला पड़ जाता था और उसके कहने पर आँखें बंद करके चलता था। बेटा दुर्योधन ! मैं तुझे रोक न सका। तुझे बुरा लगे ऐसा कुछ करने की शक्ति मुझमें नहीं थी। सम्भवतः तेरी

योजनाएँ मुझे मन में भाती होंगी और मैं तेरा छिपा संगी हूँगा; परन्तु बात केवल यही थी कि प्रकट होने का साहस मुझमें नहीं था।

"संजय ! वह देखो, श्रीकृष्ण के रथ की आवाज सुनाई दे रही है। वह दिन तो मुझसे कभी भी नहीं भूला जायगा, जब श्रीकृष्ण संधि-पत्र लेकर आये थे। उस दिन सारे हस्तिनापुर में हलचल मच गई थी। मेरे पुत्रों की बेचैनी का तो पार ही नहीं था। भीष्म-द्रोण संधि की आशा रखकर बैठे थे। श्रीकृष्ण आकर क्या करेंगे और हमारी क्या दशा होगी, इसी विचार में मैं डूब गया था। शकुनी और दुर्योधन लगभग सारा दिन गुप्त विचार-विमर्श करते रहे। दुर्योधन बार-बार मेरे पास आकर एक यही बात कह जाता था कि पिताजी ! आप इस दुष्ट कृष्ण की बातों में न फँस जाइएगा। गांधारी ! तुम्हें याद होगा, तुमने स्वयं आकर उस दिन मुझे उलहना दिया था और दुर्योधन का त्याग करने का आग्रह किया था, परंतु मुझसे यह न हो सका। मेरे मन की गहराई से ऐसा विचार उठ रहा था कि कदाचित् दुर्योधन अपने प्रयत्न में सफल हो जायगा और पाण्डव नष्ट हो जायंगे।

"संजय ! जब श्रीकृष्ण ने राज-सभा में आकर पाण्डवों की स्थिति हमारे सामने रखी तब थोड़ी देर के लिए मुझे ऐसा लगा कि पाण्डवों के साथ युद्ध करने में कोई सार नहीं है। परंतु दुर्योधन को अपने निश्चय से हटाने की शक्ति मुझमें कहाँ थी ? मैंने उसे बहुत समझाया, पाण्डवों की शक्ति की बात कही, युद्ध के अनिष्ट उसके सामने उपस्थित किये, पर वह था दुर्योधन ! उसे मृत्यु का जरा भी भय नहीं था। हस्तिनापुर की राजगद्दी

के लिए उसका हठ शूरवीर का हठ बन गया था। शत्रु के साथ संधि करके अपनी नाक कटाने की अपेक्षा मर जाने में उसे वीरता मालूम हुई और मैं तो उसके शब्दों के आगे परास्त था। दुर्योधन की दुष्टता में भी वीरता और तेजस्विता थी। मेरी दुष्टता तो बीमारों की तरह दुर्बल थी। गांधारी! मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हारी पवित्रता में तेज है, वैसा ही तेज दुर्योधन की दुष्टता में था और इसके विपरीत मैं बलहीन दुष्टता का दास था। दुर्योधन के जैसी सबल दुष्टता मुझमें होती तब तो मेरे पापों का अन्त कभी का आ चुका होता और मैं ईश्वर की सृष्टि में कहीं-से-कहीं पहुँच गया होता। परंतु आज मैं यहाँ पड़ा-पड़ा तड़प रहा हूँ और मेरे अपने कर्म जो कि एक-एक करके मेरे सामने खड़े हो रहे हैं, उन्हें कुंती के सामने उपस्थित करके सुख प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा हूँ!

"कुंती! श्रीकृष्ण आए और चले गए। उनके एक हाथ में संधि और दूसरे में युद्ध था। उन्होंने संधिवाला हाथ मेरे आगे किया; परंतु मैं अंधा उसे पकड़ न सका। श्रीकृष्ण का बड़प्पन और उनकी समझदारी मेरे पापी हृदय से टकराकर वापस चले गए। मेरे पुत्रों का मृत्यु-लेख लिख लिया गया। श्रीकृष्ण! तुम्हारे वचन सच्चे सिद्ध हुए। अंधा धृतराष्ट्र कुरु-कुल के आने वाले नाश को देख न सका। आज जब तुम सब अपने-अपने रास्ते पर लग चुके हो तब मैं अकेला अपने ही हाथों खड़ी की हुई इस वीरान सृष्टि का द्रष्टा बनकर जी रहा हूँ। श्रीकृष्ण! मैं तुम्हें भी पहचान न सका। तुम इस युग के महान् पुरुष हो, इसे मैं जान न सका। मैं तुम्हें पाण्डवों का सम्बन्धी और अर्जुन का मित्र ही समझता रहा। तुम्हारे कथन में पाण्डवों

का, मेरे पुत्रों का, समग्र क्षत्रिय जनता का और सारे भारतवर्ष का कल्याण है, यह मुझे उस समय न दीख सका। मुझे उस समय यही प्रतीत होता था कि मेरे पुत्रों का स्वार्थ, अर्थात् पांडवों का अहित और पांडवों का स्वार्थ अर्थात् मेरे पुत्रों का अहित। गांधारी! अभी कल तक मैं ऐसा ही समझता था। तुम्हारे प्रताप से आज और ही कुछ समझ पाया हूँ। आज मुझे दिखाई दे रहा है कि व्यक्ति का हित, समाज का हित और समस्त मानव-जाति का हित, ये सब एक-दूसरे के विरोधी नहीं हैं। जब ये विरोधी जान पड़ते हैं तब या तो दृष्टि में दोष होता है या हिताहित के विचार में दोष होता है। श्रीकृष्ण ने कौरव-सभा में सिंहनाद करके घोषणा की; परंतु मैं कान बंद किए बैठा उसे कैसे सुनता? श्रीकृष्ण! आज तुम बहुत याद आ रहे हो!

"कुंती! मुझे गुप्तचरों ने बताया था कि श्रीकृष्ण तुमसे भी मिले थे। तुम्हारे हृदय में तो उस समय होली सुलग रही होगी? तेरह वर्षों के अंत में सिंह-समान पुत्र वनवास काटकर बाहर आएं और मेरे जैसा हितैषी ताऊ उन्हें राज्य का अर्ध-भाग देने से इंकार कर दे तब एक क्षत्राणी के हृदय की क्या दशा हो सकती है, इसकी कल्पना मैं कर सकता हूँ। कुंती! मैं अभी तक नहीं समझ सका कि मुझमें ऐसा कौन-सा लोभ उत्पन्न हो गया था कि पांडवों को पाँच ग्राम देने से भी हमने इनकार कर दिया था? मेरा वही दुर्योधन सारे हस्तिनापुर का राज्य छोड़कर आज पृथ्वी के एक कोने पर सोया हुआ है! जब श्रीकृष्ण ने पूछा था तब उसने कहा था, "सुई की नोक के बराबर भूमि भी मैं पांडवों को नहीं दूंगा।" आज मैं विपत्ति का मारा इस आश्रम में आया हूँ और मृत्यु को बार-बार आमंत्रण दे रहा हूँ;

पर उस दिन मुझे भी राज्य का अर्धभाग पांडवों को देने की सूझ न हुई। कुंती ! यह लोभ क्या वस्तु है ? मेरे पुत्र राज्य भोगते या पांडव, इसमें मुझे भेदभाव क्यों मालूम होता था ? गांधारी ! यह पहेली अभी तक हल नहीं हो रही है। कौरव जीतते तो मैं प्रसन्न होता, पांडव जीतते तो दुःखी होता; एक मेरे थे और दूसरे पराये थे; यह सब किसने समझाया था ?

"पर, नहीं। सत्ता स्वयं ही बुरी चीज है। एक बार सत्ता प्राप्त हुई कि उसका मद चढ़ने लगता है। मनुष्य को शक्ति मिलने के साथ ही उसे पचाने का बल नहीं मिलता, यही दुर्भाग्य है। द्रव्य-शक्ति का मद, राज्य-शक्ति का मद, तप-शक्ति का मद, विद्या-शक्ति का मद, शरीर-शक्ति का मद—ये सब चढ़ने पर बड़े-बड़े लोग भी पागल हो जाते हैं। मुझे राज्य मिलते ही मेरे पुत्रों का मस्तिष्क फिर गया। राज्य प्राप्त करने के लिए शक्ति की आवश्यकता है, परन्तु उससे भी अधिक शक्ति चाहिए आवश्यकता पड़ने पर प्रसन्नता से राज्य त्याग देने की। जो इस प्रकार राज्य प्राप्त कर सकता और इच्छानुसार गँवा सकता है, वही राज्य का स्वामी बनने के योग्य है; अन्य तो राज्य के दास हैं। इस प्रकार मैं और मेरे पुत्र राज्य के स्वामी नहीं, दास बने रहे। पाण्डव राज्य को गँवाना भी जानते थे और प्राप्त करना भी। इसलिए वे हस्तिनापुर के सच्चे स्वामी थे।

"कुंती ! मेरी बात का रुख फिर दूसरी तरफ चला गया; परंतु एक बात सच है। हस्तिनापुर के राज्य का मैं केवल अभिभावक था। उस राज्य को प्राप्त करने में मेरा जरा भी पसीना नहीं बहा था। मेरे हिस्से में उस राज्य के भोग-विलास आए, उसके कष्ट नहीं। ऐसा ही मेरे पुत्रों के साथ भी हुआ। जन्म

लेते ही वे राजकुमार बने और राजकुमारों के सुख भोगने लगे। ऐसी अवस्था में बड़े अधिकारियों के उत्तराधिकारियों में जो निर्बलता, लोभ, ईर्ष्या, अभिमान, दम्भ आदि अवगुण आ जाते हैं, वे मेरे पुत्रों में भी आगए और उसके परिणाम भी उन्हें भोगने पड़े। मेरे पुत्रों ने पाण्डवों को कष्ट दिए और वनवास के लिए भेज दिया। वे कष्ट और वनवास पाण्डवों के लिए तेजस्विता का शिक्षालय बन गए और वहीं पाण्डवों को क्षत्रियत्व की शुद्ध दीक्षा मिली। इसलिए वास्तव में मेरे पुत्रों ने ही पाण्डवों को तेजस्वी बनाने में सहायता की। पर यह तो आज समझ में आ रहा है। उस समय तो पाण्डवों से वैर निकालने में मुझे भी गुप्त आनंद मिलता था और ऐसा करने से ही हम कृतार्थ होंगे, ऐसा हमें परम विश्वास रहता था। आज जब जीवन के अंत पर आ गया हूँ, मुझे ऐसा अनुभव हो पाया है कि वैर निकालने की इच्छा रखनेवाले को अंत में हाथ मलते रह जाना पड़ता है। उस समय यह बात किसीने कही होती तो भी मैं न मानता; क्योंकि हस्तिनापुर के राज-सिंहासन पर बैठा था।

"यह सब जाने दो। कुंती! श्रीकृष्ण वापस चले गए और युद्ध का शंखनाद हो गया।"

"बाद की बात तो तुम लोगों को भी विदित है। अठारह दिन युद्ध होता रहा और उन अठारहों दिनों का इतिहास संजय ने मुझे सुनाया। युद्ध के दिनों में किसी-किसी समय मुझे विचार आता था कि कदाचित् भीष्म सारे पाण्डवों को मार डालें और मेरे पुत्रों को विजय प्राप्त हो जाय! कदाचित् द्रोण या कर्ण अर्जुन को मार डालें और फिर अन्य पांडव युद्ध छोड़कर भाग

जायं ! परंतु मेरे मन में निरंतर कोई यही कहता रहता था कि जहाँ श्रीकृष्ण और अर्जुन हैं, वहीं विजय है। यह गांधारी यहीं है। कुंती ! तुम्हें पता है ? मेरा दुर्योधन संग्राम में जाने से पहले इसका आशीर्वाद लेने गया था। परन्तु गांधारी इस प्रकार आशीर्वाद कैसे दे सकती थी ? यह तो सत्य की प्रतिमा है। मैं इसका पति अवश्य हूँ; परंतु इसकी पवित्रता से भय खाता हूँ। कहीं मैं उससे जल न जाऊँ ! गांधारी ने दुर्योधन को आशीर्वाद नहीं दिया। केवल यही कहा कि जिस पक्ष में धर्म होगा, उसी पक्ष की विजय होगी। तभी मैंने दुर्योधन की विजय की आशा छोड़ दी थी। गांधारी के वचन में इतनी शक्ति है।

"और हुआ भी वही। संजय ! अठारह दिनों में मुझे बीच-बीच में आशा के स्वप्न आ जाते थे। मैंने जब यह सुना कि भीष्म पितामह ने पांडवों का संहार करने का दुर्योधन को वचन दिया है तब क्षण भर मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि दुर्योधन विजयी होगा; द्रोणाचार्य ने जब चक्रव्यूह में सुभद्रा के पुत्र अभिमन्यु को भूमिशायी बना दिया और अर्जुन ने जयद्रथ को मारने या स्वयं मरने की प्रतिज्ञा की तब मुझे ऐसा लगने लगा कि अब अर्जुन जरूर जल मरेगा और मेरे पुत्रों की विजय होगी ! कुंती ! जब कर्ण ने युधिष्ठिर को घायल किया और पांडवों की छावनी में अर्जुन युधिष्ठिर का वध करने के लिए तैयार हुआ तब यह सुनकर मेरा हृदय गद्गद् हो गया और मुझे अपने पुत्रों के लिए नई आशा उत्पन्न हुई। संजय ! गुरुपुत्र अश्वत्थामा ने जब पांडवों की छावनी में रात्रि को प्रवेश करके महासंहार किया तब मुझे प्रतीत हुआ कि सारे पांडव हताश होकर प्राण त्याग देंगे और कदाचित् दुर्योधन मृत्यु-शय्या

पर ही शत्रु के विनाश का संतोष लेकर जायगा। परंतु यह सारी आशा धुएँ के बादल की तरह सिद्ध हुई। मैंने तो यह आशा की थी कि दुर्योधन कुरुक्षेत्र से लौट आकर मेरे पैरों पर गिरेगा और गांधारी की गोद में सिर रखेगा; परन्तु उसने पृथ्वी माता की गोद में सदा के लिए सिर रख लिया और युद्ध के अंत में श्रीकृष्ण मेरे पास आए।

"गांधारी! श्रीकृष्ण ने आकर मेरा हृदय तोड़ डाला। झूठी आशा पर जी रहा धृतराष्ट्र आशा-हीन हो गया और हृदय वज्र के समान बन गया। कुंती! मानोगी नहीं, परंतु उस दिन दुर्योधन जैसे पुत्र को खोकर भी मैं रो न सका। मेरी आँखों में आँसू की एक बूँद भी उस दिन न आई। मैं मूक बन गया। संजय वैद्य को बुलाकर लाए और वैद्य ने मुझे रुलाने के लिए कई उपचार किये, परंतु रुलाई कैसे आती? पत्थर के हृदय में से पानी की एक बूंद भी निकले, तभी तो!

"और फिर कुंती! एक सौ पुत्रों को रण में सुला देने पर भी मुझे अपने पापों के प्रति तिरस्कार उत्पन्न न हुआ। गांधारी को श्रीकृष्ण की सुनाई खबरों से दुःख तो हुआ; परंतु यह तो योगमाया है। इसका सारा जीवन तपे हुए सोने की तरह है, जिसमें किसी तरह की मिलावट या अशुद्धि नहीं होती। इसलिए दुर्योधन का समाचार सुनकर भी इसका धैर्य नहीं छूटा। इसे तो ऐसे ही परिणाम की आशा थी।

"कुंती! लोभी धृतराष्ट्र को तुमने नहीं पहचाना। मेरे स्वप्न भंग हो गए, मेरी आशाएँ धूल में मिल गईं, मेरे मनोरथ मन ही में रह गए। फिर भी जब पाण्डव हस्तिनापुर में आये और युधिष्ठिर मेरे चरण-स्पर्श करने आया तब मैंने उसे और

उसके भाइयों को शाप ही दिया। उसका सर्वनाश हो जाय, ऐसी मैंने कामना की। परंतु यह तो धृतराष्ट्र का शाप था! मेरे शाप में शक्ति कहाँ से होती ? मेरा शाप गांधारी के शाप की तरह थोड़े ही था, जिसके आगे श्रीकृष्ण को भी सिर झुकाना पड़ता। मेरा शाप तो मेरे ही साथ आकर टकराता था। मेरे पुत्र जब सदा के लिए सो गए तब मेरा संसार सूना होगया; जीवन में रस नहीं रहा; भाग्य में जो थोड़े दिन बदे थे, वे बिताने रह गए। परंतु मैं धृतराष्ट्र था; दुर्योधन चला गया, पर मेरी दुष्टता थोड़े ही ले गया ! मेरे पुत्र चले गए और यह मैं जानता था कि अब उनमें से एक भी पुत्र हस्तिनापुर का राज्य भोगने के लिए जीवित नहीं होगा; फिर भी मैंने जब भीम को दिखावटी स्नेह से बाहु-पाश में लिया तब उसे दबाकर मार डालने का प्रयत्न किया। पर सफलता न मिली। भीम के स्थान पर भीम की लोहे की प्रतिमा मेरे हाथ लगी और मैं मूर्ख, मनुष्य की चमड़ी के स्पर्श के भेद को भी परख न सका। यह मेरा अंतिम दाँव था।

"इसके पश्चात्, कुंती ! तुम्हें पता ही है। जीवन भर किए हुए ये सारे कर्म—जीवन भर पुत्र के समान वात्सल्य से पोसे हुए ये विचार मेरे सम्मुख आने लगे और मुझे काटने लगे। उस समय मैं क्या जानता था कि आगे चलकर ये मुझे कुतर-कुतर कर खायंगे ! हस्तिनापुर का सारा महल इस भूत-माला से घिर गया और मुझसे इसका उत्तर मांगने लगा। उसके वे महल, उसके वे कमरे, उसके वे शीशे और पलंग, उसके वे सिंहासन, उसके वे सुख-साधन, मुझे खाने को दौड़ने लगे और जिन महलों में इतना जीवन व्यतीत किया था, उनमें एक रात भी एक युग के समान लंबी मालूम होने लगी। कुंती ! पाण्डवों

ने मेरी सेवा करने में कोई कमी न रखी; दुर्योधन ने मुझे जो सुख दिया, उसकी अपेक्षा अधिक सुख मुझे मिले, इसके लिए युधिष्ठिर की चिंता और चेष्टा मैंने स्पष्ट देखी; मेरे सुख-साधन बढ़ गए; परन्तु मुझे ये सब अधिक असह्य हो गए, इसीलिए मैंने वनवास ले लिया।

"कुंती! जब मैं चला था तब मेरे मन में था कि हस्तिनापुर छोड़कर यह सब भूल जाऊँगा और तपश्चर्या में मन को लगाऊँगा; परंतु यह मेरी भूल थी। जीवन भर पाल-पोसकर बड़े किए हुए मेरे ये बच्चे मुझे इस प्रकार कैसे छोड़ देते? मेरे कृत्य मेरे मस्तिष्क में घूमते रहते हैं और विचित्र प्रकार की उलझन में मुझे डाले रहते हैं।

"कुंती! अब हृदय कुछ हलका हुआ। अब यह धृतराष्ट्र असली रूप में तुम्हारे सामने खड़ा है। यदि मैं तुमसे यह सब कहे बिना मर गया होता तो जब तुम लोग मुझे जलाते तब सारा शरीर भस्म होने पर भी यह नन्हा-सा हृदय किसी तरह भस्म न होता। आज अब मैं मरूँगा तो मुझे इस बात का संतोष होगा कि अंत में मैंने कुंती के आगे हृदय खोलकर बातें कीं।"

कुंती धीरता के साथ बोली, "आप बहुत देर से बोल रहे हैं, इस कारण थक गए हैं। अब क्षण भर शय्या पर सो जाइए और कुछ कहना हो तो कल प्रातःकाल कहियेगा।"

"नहीं, मेरी बातों का इस प्रकार अंत नहीं हो सकता। अभी तो अंदर से ऐसी-ऐसी बातें उठ रही हैं, जिनको मैं जानता तक नहीं। फिर तुम्हें क्या कहूँ? बस, अब बस हो गया! तुम तीनों सुख से सो जाओ।"

संजय बोला, "महाराज! पहले आप सो जाइए, फिर

हम जाकर सो जायंगे ।"

संजय के कहने पर धृतराष्ट्र ने शय्या पर लेटकर करवट बदल ली ।

: ५ :

अग्निदेव की गोद में

एकाएक आश्रम में चिल्लाहट सुनाई दी, "भागो-भागो, चारों ओर दावानल लग गया है। भागो भागो !"

चिल्लाहट सुनकर संजय चौक पड़ा, "देवि ! दावानल लगने की पुकार सुनाई दे रही है । अब हम क्या करेंगे ?"

गांधारी के उत्तर देने से पहले ही धृतराष्ट्र करवट बदलते हुए बोले, "देवी से क्या पूछ रहे हो ? पूछो इस धृतराष्ट्र से । पगले संजय ! यह दावानल तो ईश्वर का भेजा हुआ मालूम हो रहा है । कुंती ! मेरे हर्ष का पार नहीं है । परमात्मा ने मुझ-पर दया की ! अग्निदेव ! आओ, दौड़कर आ जाओ ! ईश्वर तुम्हारे पंखों में पवन-वेग भर दें । गांधारी ! तुम और कुंती संजय के साथ चली जाओ । मैं तो प्रभु की कृपा का स्वागत करके कृतार्थ हो रहा हूँ । संजय ! जल्दी करो ।"

"महाराज!" गांधारी ने कहा, "आपने इतनी आयु साथ बीतने पर भी गांधार-पुत्री को नहीं परख पाया ! मैं तो वहीं हूँ, जहाँ महाराज हैं । जीवन में आपके साथ बँधी हुई हूँ और मृत्यु में भी अपने ही साथ समझिए । गांधार की लड़कियों को जीना भी आता है और मरना भी ।"

"महाराज !" कुंती बोली, "मुझे संजय के साथ जाना होता, या दूसरा स्थान खोजना होता तो मैं अपने पुत्रों को

छोड़कर आपके साथ ही क्यों आती ? मैं वृष्णि-कुल की कन्या हूँ; मेरे भाई श्रीकृष्ण सारे संसार का संहार कराके वृक्ष की छाया में एक भील के बाण से मर गए। मैं पाण्डु की वधू हूँ। अपने युधिष्ठिर को राज-गद्दी पर छोड़कर आई हूँ। अतएव मुझे कोई कामना नहीं रही। आज मृत्यु स्वयं मिलने आ रही है और महाराज तथा गांधारी उसके स्वागत के लिए खड़े हैं, फिर मैं पीछे कैसे हटूँ ? जगत की सारी धूप-छांह देखली है, अब किसी तरह की भूख नहीं रही। जिस प्रकार आपके साथ हस्तिनापुर छोड़ा है, उसी प्रकार आपके साथ संसार छोड़कर अपनेको भाग्यशालिनी समझूंगी। संजय ! तुम सुख से जाओ।"

इस प्रकार बातें करते-करते ही गरम पवन वेग से चलने लगा और दवानल की लपटों की आवाज सुनाई देने लगी। धृतराष्ट्र बोले, "संजय ! जल्दी करो, तुम चले जाओ। हस्तिनापुर में जाकर महाराज युधिष्ठिर से कहना कि 'पापी धृतराष्ट्र पर अंत में प्रभु ने दया कर ही दी।' जाओ, विलम्ब न करो।"

"महाराज ! यह अग्नि आ पहुँची !"

"अग्निदेव ! पधारिये, पधारिये। आज मेरे अहोभाग्य हैं। कुंती ! गांधारी ! अग्निदेव से प्रार्थना करो कि मुझे छूकर वे ठंडे न हो जायं। अग्निदेव ! मेरे जैसे पापी को जलाते हुए आप सकुचाइएगा नहीं। गंगा और आप संसार को पवित्र करनेवाले हैं। गंगा से यह हृदय न धुल सका, अब आप भी मुझे छोड़ देंगे तो मैं कहाँ जाऊंगा ? गांधारी ! कुंती !"

"महाराज ! मुझे अग्नि लग गई है। गांधारी का आपको अंतिम प्रणाम ! कुंती—"

"कुंती ! कुंती !"

"महाराज ! मैं भी जल उठी हूं। महाराज ! आपको कुंती का अंतिम प्रणाम !"

"दोनों चली गईं ! गांधारी से तो, अग्निदेव, आप स्वयं भी पवित्र हुए होंगे, परंतु मैं तो आपको तब सच्चा जानूंगा जब आप इस धृतराष्ट्र को पकड़ेंगे। आगए, आगए ! धीरे-धीरे क्यों आ रहे हैं ? मुझे जलाने में तो, देव, आपकी पूरी परीक्षा होनी है। आगए ! आगए ! स्वागत !—बेटा दुर्योधन ! तू खड़ा है ? मैं आया···यह···आ···पहुंचा !"

× × ×

गांधारी, कुंती और धृतराष्ट्र के शरीर दावानल में जलकर भस्म हो गए।

●

महाभारत-पात्र-माला

आचार्य नानाभाई भट्ट गुजराती के प्रसिद्ध बाल-साहित्य-निर्माता हैं। आपने अपनी समर्थ लेखनी से महाभारत के पात्रों को चलता-बोलता हमारे सामने खड़ाकर दिया है। आकर्षक और सुन्दर छपाई के ये संग्रहणीय जीवन-चरित ११ भागों में प्रकाशित हैं।

१. सूतपुत्र कर्ण ॥)

महारथी कर्ण की अद्भुत शौर्य और दान की कथाओं से भरी जीवनी।

२. पांचाली द्रौपदी ॥)

द्रौपदी का जीवन-वृत्त जिसके अपमान पर महाभारत-युद्ध हुआ।

३. दुर्योधन ॥)

कुटिल दुर्योधन की शिक्षात्मक जीवनी।

४. महावीर भीमसेन ॥)

आश्चर्यजनक कृत्यों से भरी भीम की जीवनी।

५. महारथी अर्जुन ॥।)

महाभारत-समर-विजयी अर्जुन का वीर-रसपूर्ण जीवन-चरित।

६. धर्मराज युधिष्ठिर ॥)

सत्यवादी धर्मराज का जीवन-वृत्तान्त जो कष्टों में धैर्य सिखाता है।

७. कुन्ती : गांधारी ॥)

पाण्डव-माता कुंती और सच्ची माता गांधारी का आदर्श जीवन-चरित।

८. द्रोण : अश्वत्थामा ॥)

पराक्रमी आचार्य के त्यागमय तथा पितृभक्त पुत्र अश्वत्थामा का रोमांचकारी जीवन-चरित, जिससे वीरता और त्याग की भावना उभर आती है।

९. पितामह भीष्म ॥)

पितृभक्त आदर्श ब्रह्मचारी भीष्म की तेजोमय जीवन-कथा।

१०. धृतराष्ट्र ॥)

पुत्र-प्रेम में अन्यायी बने राजा की कथा।

११. श्रीकृष्ण ॥।)

महाभारत के नायक का पावन जीवन-चरित।
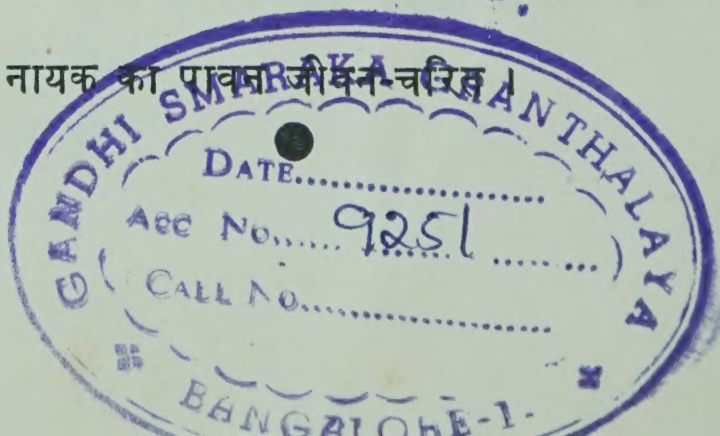
महाभारत-पात्रमाला की पुस्तकें

१. सूतपुत्र कर्ण
२. पांचाली द्रौपदी
३. दुर्योधन
४. महावीर भीमसेन
५. महारथी अर्जुन
६. धर्मराज युधिष्ठिर
७. कुंती : गांधारी
८. द्रोण : अश्वत्थामा
९. पितामह भीष्म
१०. धृतराष्ट्र
११. श्रीकृष्ण

१०

आठ आन